साधना पर इक्कीस महत्वपूर्ण संकेत

स्वामी कृष्णानन्द

द डिवाइन लाइफ सोसायटी
शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश, भारत
वेबसाइट: www.swami-krishnananda.org

१. सर्वप्रथम, जीवन के लक्ष्य की स्पष्ट धारणा होनी चाहिए।

२. लक्ष्य ऐसा होना चाहिए जो किसी अन्य विचार, भावना या अनुभव द्वारा बाद में बदला न जा सके या उससे परे न हो जाए। इसका अर्थ है कि लक्ष्य परम होना चाहिए और उससे परे कुछ भी नहीं होना चाहिए।

३. यह स्पष्ट हो जाएगा कि चूँकि परम लक्ष्य एक ही है और मन के सामने स्पष्ट रूप से रखा गया है, इसलिए संसार की अन्य सभी वस्तुएँ इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए केवल एक साधन, सहायक या उपकरण बन जाती हैं।

४. यह भूल करना संभव है कि संसार की केवल कुछ ही वस्तुएँ जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हैं और अन्य बाधाएँ हैं। परन्तु यह सत्य नहीं है, क्योंकि संसार की सभी वस्तुएँ परस्पर जुड़ी हुई हैं और आवश्यक को अनावश्यक से, अच्छे को बुरे से अलग करना—केवल सापेक्ष अर्थ में ही संभव है। तथाकथित अनावश्यक या व्यर्थ वस्तुएँ वे हैं जिनका हमारे जीवन के केंद्रीय उद्देश्य से सूक्ष्म संबंध हमारे मन को स्पष्ट नहीं होता। यह तब होता है जब हमारा मन अचानक उत्पन्न भावनाओं या उत्साह के आवेग में बह जाता है।

५. इन सबका अर्थ यह है कि जीवन के किसी भी पहलू को पूर्णतः नकारना—मानो वह हमारे जीवन के उद्देश्य से सर्वथा असंबद्ध

हो—न तो उचित है और न ही व्यावहारिक। परन्तु यहीं से साधना के अभ्यास में कठिनाई आरंभ होती है, क्योंकि किसी स्थिति को समझने का प्रयास करते समय उसके हर पहलू पर विचार करना मानवीय दृष्टि से संभव नहीं है।

६. इसका समाधान वह प्रशिक्षण है जो किसी योग्य गुरु के अधीन प्राप्त किया जाना चाहिए, जो अकेले ही ऐसी व्यापक दृष्टि विकसित करने के उपाय सुझा सकते हैं—जो कि सच्चे आध्यात्मिक जीवन अथवा उच्च ध्यान के जीवन की पूर्वशर्त है।

७. मानव प्रकृति में आर्थिक एवं भौतिक आवश्यकताएँ तथा जीवंत आकांक्षाएँ भी होती हैं, जिन्हें उचित समय पर और उचित अनुपात में पूरा किया जाना चाहिए—अपने लिए सुख-सुविधा और संतोष प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि शारीरिक, प्राणिक अथवा मनोवैज्ञानिक—सभी व्यक्तिगत इच्छाओं या आवेगों के उदात्तीकरण की दृष्टि से। इस तथ्य से सर्वथा अनजान रहना साधना के मार्ग पर आगे के अभ्यास में एक प्रकार की बाधा सिद्ध हो सकता है।

८. निस्संदेह यह आवश्यक है कि व्यक्ति किसी गुरु के मार्गदर्शन में उचित एकांत का जीवन व्यतीत करे—जब तक कि वह अपने पैरों पर खड़ा होकर किसी की सहायता के बिना स्वतंत्र रूप से विचार करने में सक्षम न हो जाए।

९. परन्तु व्यक्ति को समय-समय पर यह भी परखना चाहिए कि वह दुरूह और असंगत परिस्थितियों के बीच रहते हुए भी अपनी प्रतिक्रियाओं का प्रतिकार कर सकता है या नहीं। एकांत का अर्थ एक प्रकार का स्व-सम्मोहन या शीतनिद्रा और आसपास के वातावरण का सामना करने की अक्षमता नहीं होना चाहिए।

१०. इसका अर्थ यह भी नहीं होना चाहिए कि अवसर आने पर व्यक्ति अकेले एकांत में रह ही न सके। संक्षेप में, आदर्श यह होना चाहिए कि परिस्थितियों के प्रति—चाहे व्यक्ति अकेला हो अथवा

असंगत सामाजिक वातावरण के बीच हो—समभाव की स्थिति प्राप्त की जाए।

११. एकांत में रहते हुए मन को अपने पारिवारिक जीवन की परिस्थितियों, सेवाकालीन जीवन या ऐसी समस्याओं की ओर नहीं जाने देना चाहिए जो ईश्वर में मन की एकाग्रता को भंग कर सकती हों, क्योंकि इन पूर्व अनुभवों का दबाव कभी-कभी ईश्वर के प्रति हमारे प्रेम से अधिक तीव्र सिद्ध हो सकता है।

१२. ईश्वर में एकाग्र होना तब तक असंभव है जब तक व्यक्ति को यह दृढ़ विश्वास और श्रद्धा न हो कि वह जो कुछ भी इस संसार से अपेक्षा रखता है वह ईश्वर से भी प्राप्त हो सकता है—वरन् उन सभी वस्तुओं से कहीं अधिक, जो संसार के पास खजाने और मूल्यों के रूप में हैं।

१३. जीवन के लक्ष्य का दर्शन तब कठिन हो जाता है जब मन ध्यान से बाहर उन वस्तुओं की ओर चला जाता है जिनकी वह संसार में कामना करता है। इसलिए उपनिषदों और भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत और ऐसे अन्य शास्त्रों का गहन अध्ययन आवश्यक है ताकि मन में ईश्वर की सर्वोच्चता का दृढ़ विश्वास जम जाए।

१४. स्वाध्याय, मंत्र का जप और ध्यान—ये आध्यात्मिक साधना के तीन मुख्य अंग हैं।

१५. स्वाध्याय का अर्थ कहीं से भी कोई भी पुस्तक किसी भी समय पढ़ना नहीं है। इसका अर्थ है ऊपर सुझाए गए ग्रंथों में से चुने हुए पवित्र ग्रंथों का—या किसी एक ग्रंथ का—प्रतिदिन निरंतर और नियमित अध्ययन। नियत समय पर, प्रतिदिन, नियत अवधि तक किया गया अध्ययन अपेक्षित फल देगा।

१६. मंत्र का जप आरंभ में कुछ मृदु ध्वनि के साथ करना चाहिए ताकि मन विभिन्न विषयों की ओर न भटके। मंत्र का ऊँचे स्वर में उच्चारण मन को एकाग्रता के बिंदु पर वापस ले आएगा। बाद में जप

केवल ओठों की गति के साथ, परन्तु बिना आवाज किए हो सकता है। अंत में जप केवल मानसिक हो सकता है, बशर्ते कि मानसिक जप के दौरान मन भटके नहीं।

१७. सुविधाजनक अवधि—जैसे आधा घंटा या एक घंटा—विभिन्न समयों में निर्धारित की जानी चाहिए, जिससे दैनिक साधना कम से कम तीन घंटे प्रतिदिन हो और इससे कम नहीं। दिन बीतने के साथ अपनी क्षमता के अनुसार इसे बढ़ाया जा सकता है।

१८. जप के दौरान मन को मंत्र के अर्थ, मंत्र के देवता के प्रति आत्म-समर्पण और अंततः उस महान देवता के साथ अपनी एकता का चिंतन करना चाहिए। प्रतिदिन जप के दौरान इस गहरी भावना को बनाए रखने का प्रयास किया जाना चाहिए।

१९. ध्यान या तो जप के साथ संयुक्त हो सकता है या जप से स्वतंत्र भी हो सकता है। जप-सहित ध्यान का अर्थ है मंत्र का मानसिक पुनरावर्तन और साथ ही, जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, मंत्र के अर्थ पर गहरा ध्यान।

२०. जप-रहित ध्यान एक उच्चतर अवस्था है जहाँ मन ईश्वर के विचार में, ईश्वर को समर्पण में और ईश्वर के साथ एकता में इतना लीन हो जाता है कि इस ध्यान में जप स्वतः रुक जाता है। यही ध्यान की सर्वोच्च अवस्था है।

२१. अपनी समस्त साधना के दौरान यह अनुभव करना आवश्यक है कि स्वयं और यह संपूर्ण ब्रह्मांड—दोनों ईश्वर के साथ एक हैं।